Journal of Research and Development
Peer Reviewed International, Open Access Journal.
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-17, Issue-5 | May - 2025

Original Article

जनजातियों की राजनीतिक सहभागिता एवं सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक सशक्तिकरण एक मानवशास्त्रीय अध्ययन।

डॉ. कुसुम कुमारी
पी–एच. डी. पंजीयन संख्या–264 / 2020, स्नातकोत्तर मानवशास्त्र विभाग, ति. माँ. भा. वि. वि.,भागलपुर
ईमेल: kumarikusum23983@gmail.com

Manuscript ID:
JRD -2025-170526
ISSN: 2230-9578
Volume 17
Issue 5|
Pp. 156-164
May 2025
Submitted: 04 Apr. 2025
Revised: 14 Apr. 2025
Accepted: 25 May. 2025
Published: 31 May. 2025

सारांश

आलेख भारत के जनजातीय समुदायों के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक सशक्तिकरण की प्रक्रिया का मानवशास्त्रीय दृष्टिकोण से विश्लेषण करता है। भारत में अनुसूचित जनजातियाँ कुल जनसंख्या का 8.6 प्रतिशत है, जो ऐतिहासिक रूप से उपेक्षा, विस्थापन और सांस्कृतिक वंचना का सामना करती रहा है। संविधान और विभिन्न कानूनों जैसे– पेसा अधिनियम (1996), वन अधिकार अधिनियम (2006) तथा मनरेगा आदि ने उन्हें अधिकार और प्रतिनिधित्व प्रदान करने का प्रयास किया है, किंतु कार्यान्वयन की असमानता और प्रशासनिक उदासीनता के कारण अपेक्षित प्रभाव नहीं हुआ है।

राजनीतिक सशक्तिकरण में ग्राम सभाओं की भूमिका महत्वपूर्ण है, परंतु वास्तविक निर्णयों में जनजातीय भागीदारी सीमित रहती है। सामाजिक सशक्तिकरण की दिशा में शिक्षा, स्वास्थ्य और महिला सशक्तिकरण के प्रयास हुए हैं, किंतु सांस्कृतिक असंगतियों और भाषायी अवरोधों ने बाधाएँ उत्पन्न की है। आर्थिक सशक्तिकरण हेतु वन अधिकार, स्वरोजगार योजनाएँ और वित्तीय समावेशन की नीतियाँ चलाई गई है, फिर भी विस्थापन, ऋण असमानता और बाजार से दूरी जैसी समस्याएँ बनी हुई है।

वैयक्तिक अध्ययन (बस्तर, नंदुरबार, उत्तर–पूर्व भारत) यह दर्शाता है कि जहां स्थानीय प्रशासन सक्रिय, संस्कृति–संवेदनशील और समुदाय आधारित है, वहां सशक्तिकरण के सकारात्मक परिणाम प्राप्त हुए हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि जनजातीय सशक्तिकरण केवल योजनाओं से नहीं, बल्कि स्वायत्तता, गरिमा और सहभागिता के साथ लागू होना चाहिए। भविष्य के शोधों में सांस्कृतिक दृष्टिकोण, डिजिटल समावेशन और युवाओं की भूमिका को प्रमुखता दी जानी चाहिए।

शब्द–कुंजी– *आदिवासी, राजनीतिक भागीदारी, सशक्तिकरण, संरक्षात्मक विधिक, संरचनात्मक प्रकार्यवाद, सांस्कृतिक सापेक्षवाद, उत्तर–संरचनावाद, उपवर्गीय सिद्धांत, गोत्रीय परिषदों, अपराधी जनजाति, उलगुलान, त्रिस्तरीय, पेसा अधिनियम, वन धन योजना, उद्यमिता, इको–टूरिज्म, जैविक खेती, हस्तशिल्प, मुरिया, हलबा, बैगा, मातृसत्तात्मक समाज।*

प्रस्तावना

भारत में जनजातीय समुदायों को 'आदिवासी' के नाम से संबोधित किया जाता है, जो ऐतिहासिक रूप से सबसे अधिक उपेक्षित और सामाजिक–राजनीतिक रूप से विशिष्ट समूहों में से एक रहा है। भारत के 2011 की जनगणना के अनुसार, अनुसूचित जनजातियों (Scheduled Tribes & STs) की कुल जनसंख्या का लगभग 8.6 प्रतिशत हिस्सा है, जो मुख्यतः झारखंड, छत्तीसगढ़, ओडिशा, मध्य प्रदेश और उत्तर–पूर्वी राज्य के वनों और पहाड़ी क्षेत्रों में निवास करते हैं। इन समुदायों की अपनी विशिष्ट भाषाएं, सामाजिक प्रणालियाँ, परंपराएं और स्वशासी संस्थाएं होती है। जनजातीय समूहों की राजनीतिक भागीदारी और सशक्तिकरण का अध्ययन महत्वपूर्ण है क्योंकि उन्हें लोकतांत्रिक ढांचे में समावेश की दिशा में परखा गया एक संकेतक है। भारतीय संविधान में इन समुदायों के लिए राजनीतिक सुरक्षा का प्रबंध किया गया है, जिसमें आरक्षण और संरक्षात्मक विधिक प्रावधान शामिल है। इन संस्थागत प्रयासों के बावजूद जनजातीय समुदाय सामाजिक गतिशीलता, आर्थिक विकास और राजनीतिक प्रतिनिधित्व के क्षेत्र में विभिन्न स्तरों पर बहिष्करण का सामना करते हैं। जनजातीय समुदायों की राजनीतिक भागीदारी तथा उनके सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक सशक्तिकरण का

Creative Commons (CC BY-NC-SA 4.0)
This is an open access journal, and articles are distributed under the terms of the Creative Commons Attribution-NonCommercial-ShareAlike 4.0 International Public License, which allows others to remix, tweak, and build upon the work noncommercially, as long as appropriate credit is given and the new creations ae licensed under the idential terms.

Address for correspondence:
डॉ. कुसुम कुमारी, पी-एच. डी. पंजीयन संख्या-264/2020, स्नातकोत्तर मानवशास्त्र विभाग, ति. माँ. भा.वि. वि.,भागलपुर

How to cite this article:
कुमारी, . कुसुम . (2025). जनजातियों की राजनीतिक सहभागिता एवं सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक सशक्तिकरण एक मानवशास्त्रीय अध्ययन।. Journal of Research & Development, 17(5), 156–164.
https://doi.org/10.5281/zenodo.15737771

Quick Response Code:
Website: https://jrdrvb.org/
DOI:10.5281/zenodo.15737771

Journal of Research and Development
Peer Reviewed International, Open Access Journal.
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-17, Issue-5 | May - 2025

गहराई से विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है। अध्ययन का उद्देश्य मानवशास्त्रीय दृष्टिकोण से उन बाधाओं को उजागर करना है, जो इन समुदायों के वास्तविक सशक्तिकरण के मार्ग में बाधक है और साथ ही नीतिगत व व्यावहारिक सुझाव प्रस्तुत करना है, जो उनके सशक्तिकरण को जमीनी स्तर पर सुदृढ़ बनाता है।

सैद्धांतिक अवसंरचना

सामाजिक विज्ञान में सुदृढ़ सैद्धांतिक अवसंरचना अध्ययन की दिशा और गहराई को निर्धारित करता है। जनजातीय समुदायों की राजनीतिक भागीदारी और सशक्तिकरण के विश्लेषण हेतु प्रमुख अवधारणाओं को परिभाषित करने के साथ ही ऐसे मानवशास्त्रीय सिद्धांतों की चर्चा की गई है, जो सशक्तिकरण की प्रक्रिया को बेहतर ढंग से समझने में सहायता करते हैं।

प्रमुख अवधारणाएं

राजनीतिक भागीदारी– राजनीतिक भागीदारी के माध्यम से नागरिक नीति निर्माण या नेतृत्व चयन की प्रक्रिया में भाग लेना है। जनजातीय समुदायों के सन्दर्भ में इसमें मतदान, चुनाव लड़ना, ग्राम सभा में भाग लेना, पारंपरिक पंचायतों में सहभागिता और विरोध प्रदर्शन आदि शामिल है।

सामाजिक सशक्तिकरण– सामाजिक सशक्तिकरण के माध्यम से सम्मान, प्रतिष्ठा और शिक्षा, स्वास्थ्य, न्याय जैसी सामाजिक संस्थाओं तक समान पहुँच सुनिश्चित किया जाता है। "जनजातीय समुदायों के लिए यह उनके सांस्कृतिक अस्तित्व, भाषाई विविधता और पारंपरिक जीवन मूल्यों की रक्षा से भी जुड़ा हुआ है।"[1]

आर्थिक सशक्तिकरण– आर्थिक सशक्तिकरण के अंतर्गत भूमि, संसाधन, कौशल और बाज़ार तक पहुँच शामिल है। जनजातीय समूहों के अधिकारों के अंतर्गत वन अधिकार अधिनियम (2006) के तहत भूमि प्राप्त करना, मनरेगा और "स्वयं सहायता समूहों (SHGs) जैसे कार्यक्रमों से जुड़ना तथा परंपरागत आजीविका की सुरक्षा से जुड़ा है।"[2]

राजनीतिक सशक्तिकरण– राजनीतिक सशक्तिकरण केवल औपचारिक प्रतिनिधित्व नहीं होकर इसमें निर्णय लेने की शक्ति, स्थानीय स्वशासन और संसाधनों पर नियंत्रण शामिल है। पंचायती राज व्यवस्था, अनुसूचित क्षेत्रों में ग्राम सभा की भूमिका और पारंपरिक नेतृत्व प्रणालियों की मान्यता से परिलक्षित होता है।"[3]

मानवशास्त्रीय सशक्तिकरण सिद्धांत

मानवशास्त्र में सशक्तिकरण की समझ हेतु कई सिद्धांत सहायक हैं–

संरचनात्मक प्रकार्यवाद (Structural Functionalism)– इस सिद्धांत के अनुसार जनजातीय राजनीतिक ढाँचे सामाजिक संतुलन को बनाए रखने का कार्य करते हैं, जैसे– मुखिया प्रणाली या गोत्रीय परिषद।

सांस्कृतिक सापेक्षवाद (Cultural Relativism)– फ्रेंच बोआस के अनुसार हर समाज की मान्यताएँ और मूल्य अपनी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में समझी जानी चाहिए। सशक्तिकरण तभी सार्थक होता है, जब वह जनजातीय संस्कृति के अनुरूप होता है।

एजेंसी सिद्धांत और उत्तर–संरचनावाद (Post&Structuralism and Agency Theory)– सिद्धांत में इस बात पर बल दिया जाता है कि किस प्रकार व्यक्ति या समुदाय शोषणकारी संरचनाओं का प्रतिकार कर आत्मनिर्भरता प्राप्त करता है।

उपवर्गीय सिद्धांत (Subaltern Theory)– सिद्धांत में जनजातीय समुदाय जैसे वंचित समूहों की आवाज़ प्रायः मुख्यधारा में दब सी जाती है और सशक्तिकरण का अर्थ है– उनके दृष्टिकोण को प्रमुखता देते हुए क्रियान्वित करना।

सशक्तिकरण के संकेतक और मापदंड

सशक्तिकरण के मापन के लिए निम्नलिखित संकेतकों का उपयोग किया जाता है:–

राजनीतिक संकेतक– मतदान दर, चुने गए जनजातीय प्रतिनिधियों की संख्या, ग्राम सभा में भागीदारी, महिला और युवा नेतृत्व।

सामाजिक संकेतक– साक्षरता दर, विद्यालय नामांकन, स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता, लैंगिक असमानता।

आर्थिक संकेतक– भू–स्वामित्व, पारिवारिक आय, सरकारी योजनाओं तक पहुँच, SHGs की भागीदारी।

सांस्कृतिक संकेतक– जनजातीय भाषा में शिक्षा, पारंपरिक पर्वों का संरक्षण, पवित्र स्थलों की रक्षा।

इन संकेतकों को मात्र आँकड़ों से नहीं बल्कि नृवंशात्मक अध्ययन (Ethnographic fieldwork) के माध्यम से जांच की जाती है, जिससे समुदायों के आत्मबोध और गरिमा को भी समझा जाता है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारत में जनजातीय समुदायों का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य आत्मनिर्भरता, प्रतिरोध और उपेक्षा के लंबे संघर्ष से घिरा हुआ है। पूर्व–औपनिवेशिक काल में अधिकांश जनजातीय समूह अपने पारंपरिक क्षेत्रों जैसे– वनों, पहाड़ियों और सीमांत क्षेत्रों में अपेक्षाकृत स्वायत्त रूप से रहा करते हैं। "जनजातीय समुदायों की सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्थाएं परंपरागत मुखिया प्रणाली, गोत्रीय परिषदों और सामूहिक निर्णयों पर आधारित हुआ करता है।"[4] समुदायों का जीवन प्रकृति के साथ सह–अस्तित्व पर आधारित हुआ करता था और वे मुख्यधारा के राजतंत्रों से प्रायः स्वतंत्र रहते थे।

ब्रिटिश उपनिवेशवाद ने इस स्वायत्तता को गंभीर रूप से बाधित किया है। अंग्रेजों ने अपने प्रशासनिक और कानूनी ढाँचे के तहत जनजातीय क्षेत्रों को राज्य के नियंत्रण में लाने का प्रयास किया था। "भारतीय वन अधिनियम–1865 और इसके बाद के संशोधनों ने वनों को 'सरकारी संपत्ति' घोषित किया और जनजातीय समुदायों की भूमि तथा संसाधनों पर पारंपरिक

---

[1] Rao, M. S. A. (2002). *Social movements and social transformation: A study of two backward classes movements in India*. Manohar Publishers.

[2] Mehta, R. (2013). *Tribal development in India: A study in human rights perspective*. Concept Publishing Company.

[3] Baviskar, A. (2004). *In the Belly of the River: Tribal Conflicts over Development in the Narmada Valley*. Oxford University Press. p.254.

[4] Guha, R. (1999). *Savaging the Civilized: Verrier Elwin, His Tribals, and India*. University of Chicago Press. p. 45.

Journal of Research and Development
Peer Reviewed International, Open Access Journal.
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-17, Issue-5 | May - 2025

स्वामित्व को अस्वीकार कर दिया था।"[5] इससे उन्हें न केवल आर्थिक रूप से कमजोर किया है, बल्कि उनकी सामाजिक–राजनीतिक प्रणालियों को भी छिन्न–भिन्न कर दिया है।

औपनिवेशिक सरकार ने कुछ जनजातीय मुखियाओं को ज़मींदारी व्यवस्था के तहत शामिल किया, जिससे जनजातीय समुदायों के भीतर पारंपरिक शक्ति–संतुलन प्रभावित हुआ। इसके साथ ही, कई जनजातीय समूहों को 'अपराधी जनजाति' घोषित कर उनकी छवि को कलंकित किया गया था। इस अवधि में कई प्रतिक्रियात्मक जनजातीय आंदोलनों भी हुए जैसे–संताल विद्रोह (1855–56), "बिरसा मुंडा का उलगुलान (1899–1900) और भील विद्रोह, जो भूमि अधिकार, सामाजिक न्याय और सांस्कृतिक स्वतंत्रता की मांग किया करते थे।"[6] आंदोलनों ने स्वतंत्रता संग्राम और जनजातीय चेतना में एक ऐतिहासिक आधार प्रदान किया है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद, भारतीय संविधान ने जनजातीय समुदायों को विशेष संवैधानिक दर्जा दिया। अनुच्छेद 342 के तहत अनुसूचित जनजातियों की पहचान की गई और अनुच्छेद 244 तथा पाँचवी और छठी अनुसूची के माध्यम से अनेक क्षेत्रों के लिए विशेष प्रशासनिक प्रावधान किए गए थे। शिक्षा, नौकरी और राजनीतिक प्रतिनिधित्व में आरक्षण की व्यवस्था की गई। जनजातीय उप–योजना (Tribal Sub-Plan - TSP) जैसे कार्यक्रमों का उद्देश्य विकास की मुख्यधारा में इन समुदायों को शामिल करना था।

21वीं सदी की शुरुआत में कुछ सुधारात्मक विधायी प्रयास हुए जैसे– पेसा अधिनियम–1996 और वन अधिकार अधिनियम–2006, जिसका उद्देश्य ग्राम सभा को निर्णय लेने का अधिकार और जंगलों पर सामुदायिक अधिकार देना था। पेसा ने अनुसूचित क्षेत्रों में पारंपरिक ग्राम स्वराज को मान्यता दी है, जबकि FRA ने ऐतिहासिक अन्यायों को स्वीकार कर व्यक्तिगत और सामुदायिक अधिकार प्रदान किए हैं। इन प्रावधानों का कार्यान्वयन व्यापक रूप से असमान रहा है। कई राज्यों में ग्राम सभाएं निष्क्रिय है, जनजातीय समुदायों को अपने अधिकारों की जानकारी नहीं है और वन एवं राजस्व विभाग इन अधिकारों को लागू करने में अनिच्छुक रहते हैं। प्रशासनिक ढांचा अब भी केंद्रीकृत और जनजातीय दृष्टिकोण के प्रति असंवेदनशील है।

जनजातिय समुदायों की राजनीतिक भागीदारी

जनजातीय समुदायों की राजनीतिक भागीदारी लोकतांत्रिक समावेशन का एक अत्यंत महत्वपूर्ण पक्ष है। यह केवल निर्वाचन प्रक्रिया में भागीदारी तक सीमित नहीं है, बल्कि इससे तात्पर्य निर्णय लेने की क्षमता, नेतृत्व में सहभागिता और शासन प्रणाली में प्रतिनिधित्व से भी है। भारत में अनुसूचित जनजातियों को संविधान के तहत राजनीतिक भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए विशेष प्रावधान किए गये हैं, लेकिन इसके प्रभावी क्रियान्वयन में अब भी कई बाधाएँ बनी हुई है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 330 और 332 के तहत लोकसभा और राज्य विधानसभाओं में अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षित सीटों का प्रावधान किया गया है। 2019 के आम चुनावों में 47 लोकसभा सीटें अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षित थी (Election Commission of India, 2019)। इसके अलावे, कई जनजातीय नेताओं ने राज्यपाल, मंत्री और अन्य उच्च राजनीतिक पदों पर आसीन हुए हैं, जिसमें वर्तमान समय में देश की पहली जनजातीय महिला राष्ट्रपति श्रीमती द्रौपदी मुर्मू जी हैं।

73वें संविधान संशोधन (1992) के माध्यम से भारत में त्रिस्तरीय पंचायती राज प्रणाली अपनायी गई एवं अनुसूचित क्षेत्रों में पेसा अधिनियम (1996) के अंतर्गत जनजातीय स्वशासन को वैधानिक मान्यता दी गई। पेसा के तहत ग्राम सभाओं को अधिकार दिए गए कि, "वे विकास योजनाओं को स्वीकृति प्रदान कर सकते हैं, संसाधनों का प्रबंधन कर सकते हैं एवं परंपरागत न्याय प्रणाली को अपना सकते हैं।"[7] यह अधिनियम जनजातीय स्वायत्तता की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। पेसा का कार्यान्वयन काफी असमान और सीमित रहा है। कई राज्यों में ग्राम सभाएँ केवल औपचारिकताओं तक सीमित है, जिस पर स्थानीय प्रशासनिक अधिकारियों का नियंत्रण बना रहता है। निर्वाचित जनजातीय प्रतिनिधियों को निर्णय लेने की स्वतंत्रता नहीं मिलती और वे प्रशिक्षण, संसाधनों और कानूनी जानकारी के अभाव में केवल प्रतीकात्मक भूमिका निभाते हैं।

राजनीतिक जागरूकता और चुनावों में भागीदारी के अंतर्गत, हाल के वर्षों में जनजातीय क्षेत्रों में मतदान प्रतिशत में वृद्धि हुई है, विशेष रूप से झारखंड और छत्तीसगढ़ जैसे राज्यों में कई बार राष्ट्रीय औसत से अधिक रहा है। "मतदाता शिक्षा की कमी, सामाजिक दबाव और राजनीतिक एजेंडों की जानकारी के अभाव के कारण मतदान जागरूकता पूर्वक नहीं हो पाता है।"[8] कुछ क्षेत्रों में जनजातीय राजनीतिक चेतना ने संगठित आंदोलनों और अस्मिता की राजनीति का रूप ले लिया है। झारखंड राज्य का निर्माण (2000) झारखंड मुक्ति मोर्चा (JMM) जैसे जनजातीय संगठनों के लंबे संघर्ष का परिणाम था। इसी प्रकार, उत्तर–पूर्वी राज्यों में क्षेत्रीय जनजातीय पार्टियाँ शासन में निर्णायक भूमिका निभा रही है। लैंगिक दृष्टिकोण से, पंचायतों में महिलाओं के लिए आरक्षण ने जनजातीय महिलाओं की राजनीतिक उपस्थिति को बढ़ाया है। कई मामलों में निर्वाचित महिलाएँ 'प्रॉक्सी प्रतिनिधि' की भूमिका तक सीमित रह जाती है। इसके विपरीत, "मेघालय की खासी और गारो जनजातियों में मातृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था के कारण महिलाओं की सहभागिता अधिक स्वायत्त और सामाजिक रूप से स्वीकृत रही है।"[9] भारत में जनजातीय समुदायों की राजनीतिक भागीदारी को संवैधानिक और विधिक समर्थन प्राप्त है, लेकिन प्रतिनिधित्व और वास्तविक सशक्तिकरण के बीच एक बड़ा अंतर बना हुआ है।

---

[5] Gadgil, M., & Guha, R. (1995). *Ecology and Equity: The Use and Abuse of Nature in Contemporary India*. Penguin Books. p.117.

[6] Singh, K. S. (1982). *Tribal Movements in India: Volume I*. Manohar Publications. p.211.

[7] Sharma, A. N. (2001). *PESA and the Dynamics of Tribal Self-Governance*. Economic and Political Weekly, 36(50), p.118–121.

[8] Yadav, Y. (2003). *Understanding the Second Democratic Upsurge: Trends of Bahujan Participation in Electoral Politics in the 1990s*. In *Transforming India: Social and Political Dynamics of Democracy*. Oxford University Press. p.203.

[9] Lyndem, B. (2004). *Women in Governance: The Khasi Perspective*. Indian Anthropologist, 34(1), p.72–80.

Journal of Research and Development
Peer Reviewed International, Open Access Journal.
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-17, Issue-5 | May - 2025

सामाजिक सशक्तिकरण

जनजातीय समुदायों का सामाजिक सशक्तिकरण ऐसे प्रक्रिया को दर्शाता है, जिसके माध्यम से ये ऐतिहासिक रूप से हाशिए पर रह रहे समूह सामाजिक संसाधनों, अधिकारों, गरिमा और संस्थागत पहुँच प्राप्त करते हैं। जनजातीय सशक्तिकरण केवल सामाजिक समावेशन नहीं है, बल्कि यह उनकी सांस्कृतिक पहचान, परंपरा, भाषा और जीवनशैली की रक्षा के साथ–साथ आधुनिक सामाजिक व्यवस्थाओं में सम्मानजनक स्थान प्राप्त करने का प्रयास भी है।

शिक्षा तक पहुँच और चुनौतियाँ– जनजातीय सशक्तिकरण का एक महत्वपूर्ण आधार शिक्षा है। 2011 की जनगणना के अनुसार, अनुसूचित जनजातियों की साक्षरता दर लगभग 59 प्रतिशत थी, जबकि राष्ट्रीय औसत 74 प्रतिशत के करीब था। जनजातीय महिलाओं की साक्षरता दर सबसे कम रही, जो बहुस्तरीय वंचना का संकेत देती है (Census of India, 2011)। सरकार द्वारा एकलव्य मॉडल आवासीय विद्यालय (EMRS), पूर्व–माध्यमिक एवं उत्तर–माध्यमिक छात्रवृत्तियाँ और शिक्षा का अधिकार अधिनियम (2009) लागू किया गया है। "पाठ्यक्रम की सांस्कृतिक असंगतता, शिक्षकों की अनुपस्थिति और भाषा अवरोध के कारण विद्यालयों में ड्रॉपआउट की दर अधिक बनी हुई है।"[10]

स्वास्थ्य सुविधाओं की स्थिति– स्वास्थ्य सेवा जनजातीय क्षेत्रों में अत्यधिक सीमित है। ऊँचाई, दुर्गमता और बुनियादी ढाँचे के अभाव के कारण सरकारी स्वास्थ्य सुविधाएं पहुँच से बाहर है। कुपोषण, शिशु मृत्यु दर और संक्रामक रोगों की दर जनजातीय आबादी में अधिक है। इसके साथ ही चिकित्सा प्रणाली और जनजातीय पारंपरिक चिकित्सा पद्धतियों के बीच सांस्कृतिक असंगति भी एक प्रमुख बाधा है। राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन (NRHM) जैसे कार्यक्रमों ने आशा कार्यकर्ताओं, मोबाइल क्लीनिक और स्वास्थ्य शिविरों के माध्यम से सुधार की कोशिश की है, लेकिन कार्यान्वयन अब भी असमान है।

आरक्षण और सकारात्मक कार्रवाई– शैक्षणिक संस्थानों और सरकारी नौकरियों में आरक्षण नीति जनजातीय सामाजिक सशक्तिकरण का एक प्रमुख साधन बन कर उभरा है। इससे उच्च शिक्षा और सरकारी सेवाओं में कुछ जनजातीय सदस्यों को अवसर प्राप्त हुए है, यह लाभ मुख्य रूप से शहरी या अपेक्षाकृत विकसित क्षेत्रों तक ही सीमित रहा है। "दूरदराज़ के इलाकों में रहने वाले अनेक जनजातीय नागरिक इन योजनाओं की जानकारी से वंचित रह जाते हैं या नौकरशाही प्रक्रियाओं के कारण लाभ नहीं उठा पाते हैं।"[11]

जनजातीय महिला सशक्तिकरण– लैंगिक परिप्रेक्ष्य– कई जनजातीय समुदायों में महिलाओं को पारंपरिक रूप से उच्च सामाजिक स्थिति प्राप्त है। मेघालय की खासी और गारो जनजातियाँ, जो मातृसत्तात्मक परिवार है, महिलाओं को संपत्ति और सामाजिक अधिकार प्रदान करती है। "आधुनिकता और बाह्य समाजों के साथ संपर्क के कारण पितृसत्तात्मक प्रवृत्तियाँ इन समुदायों में भी प्रवेश कर गई है, जिससे महिलाओं की भूमिका सीमित हो रही है।"[12] जनजातीय महिलाएं अब दोहरी उपेक्षा झेल रही है–एक ओर वे समुदाय के भीतर लैंगिक असमानता से जूझने के साथ बाह्य समाज के सामाजिक–आर्थिक वंचनाओं से प्रभावित होती है।

सिविल सोसाइटी और जागरूकता अभियानों की भूमिका– गैर–सरकारी संगठनों (NGOs) और सिविल सोसाइटी की भूमिका जनजातीय सशक्तिकरण में महत्त्वपूर्ण रही है। ये संस्थाएँ शिक्षा, कानूनी सलाह, अधिकार जागरूकता और सामुदायिक प्रशिक्षण के माध्यम से जनजातीय लोगों को संगठित करती है। आदिवासी महासभा, वनवासी कल्याण आश्रम और अन्य कई क्षेत्रीय संगठन वन अधिकार, विस्थापन और सांस्कृतिक संरक्षण के मुद्दों पर कार्यरत है। इसके साथ ही, कम्युनिटी रेडियो, स्थानीय भाषा की मीडिया और डिजिटल प्लेटफॉर्म्स भी सामाजिक जागरूकता और सशक्तिकरण के नए उपकरण के रूप में कार्य कर रहा है।

आर्थिक सशक्तिकरण

जनजातीय समुदायों का आर्थिक सशक्तिकरण केवल आजीविका या आय से जुड़ा मामला नहीं है, बल्कि यह उनके संसाधनों पर नियंत्रण, स्वावलंबन और सम्मानपूर्ण जीवन की क्षमता से जुड़ा हुआ है। पारंपरिक रूप से, जनजातीय अर्थव्यवस्था स्वावलंबी रही है, जो मुख्यतः वन उत्पाद, झूम कृषि, पशुपालन और स्थानीय कुटीर उद्योगों पर आधारित हुआ करता था। आर्थिक उदारीकरण, औद्योगीकरण एवं संसाधनों के दोहन ने जनजातीय समुदायों को हाशिए पर लाकर खड़ा कर दिया है।

वन अधिकार अधिनियम (Forest Rights Act] 2006) की भूमिका– वन अधिकार अधिनियम, 2006 (FRA) जनजातीय आर्थिक सशक्तिकरण की दिशा में एक ऐतिहासिक पहल है। यह अधिनियम उन जनजातीय और अन्य पारंपरिक वन निवासियों को अधिकार प्रदान करता है, जो लंबे समय से वन क्षेत्रों में रह रहे हैं, लेकिन उनके पास कोई वैध दस्तावेज़ नहीं है। अधिनियम के तहत उन्हें व्यक्तिगत खेती, सामुदायिक वन संसाधनों और लघु वनोपज पर अधिकार प्रदान किया गया है। इस अधिनियम का कार्यान्वयन कमजोर और असमान रहा है। कई राज्यों में ग्राम सभाओं को उचित रूप से सशक्त नहीं किया गया और वन विभाग तथा प्रशासनिक संस्थाएँ प्रायः जनजातीय दावों का विरोध करती है। इससे कई पात्र समुदाय आज भी अपने पारंपरिक अधिकारों से वंचित हैं।

मनरेगा एवं आजीविका योजनाएँ– महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (MGNREGA) एक ऐसी योजना है जो ग्रामीण परिवारों को साल में 100 दिनों का मजदूरी कार्य सुनिश्चित करती है। जनजातीय क्षेत्रों में यह योजना मौसमी प्रवासन को रोकने और आय में स्थिरता लाने में सहायक रही है। भुगतान में देरी, कार्य की अनुपलब्धता और पारदर्शिता की कमी जैसी समस्याएं इसके प्रभाव को सीमित करती है। इसके अलावा, राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (NRLM) और स्किल इंडिया जैसे कार्यक्रमों के माध्यम से जनजातीय युवाओं और महिलाओं को स्वरोज़गार और प्रशिक्षण के अवसर उपलब्ध कराया

---

[10] Nambissan, G. B. (2009). *Exclusion and Discrimination in Schools: Experiences of Dalit Children*. Indian Institute of Dalit Studies. p.231.

[11] Xaxa, V. (2001). *Protective Discrimination: Why Scheduled Tribes Lag Behind Scheduled Castes*. Economic and Political Weekly, 36(29), p.32–38.

[12] Rao, A. (2004). *Gender, Caste, and Class in India's Tribal Societies*. Social Scientist, 32(1–2), p.58–67.

Journal of Research and Development
Peer Reviewed International, Open Access Journal.
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-17, Issue-5 | May - 2025

जाता है, विशेषकर स्वयं सहायता समूहों (SHGs) के माध्यम से जनजातीय महिलाओं ने बचत, ऋण और छोटे व्यवसायों में भागीदारी शुरू की है।

वित्तीय समावेशन और ऋण तक पहुँच– जनजातीय क्षेत्रों में बैंकिंग सेवाओं, क्रेडिट और बीमा योजनाओं की पहुँच अत्यंत सीमित है। जन धन योजना, डिजिटल बैंकिंग और सहकारी बैंक जैसी पहलें वित्तीय समावेशन को बढ़ावा दे रही है, परंतु पर्याप्त दस्तावेज़, वित्तीय साक्षरता और नेटवर्क की कमी बड़ी बाधाएँ है। "माइक्रोफाइनेंस और SHGs ने कुछ हद तक ऋण सुविधा प्रदान की है, किंतु अत्यधिक ऋण, शोषणकारी ब्याज दरें और बाज़ार से जुड़ाव की कमी आज भी समस्याएँ बनी हुई है।"[13]

भूमि विस्थापन और विकास की चुनौतियाँ– बांध, खनन और औद्योगिक जोन जैसी विकास परियोजनाओं के कारण लाखों जनजातीय परिवारों का विस्थापन हुआ है। वाल्टर फर्नांडिस (2007) के अनुसार, भारत में विकास परियोजनाओं से विस्थापित होने वालों में 40 प्रतिशत से अधिक जनजातीय समुदायों से जुड़े हैं। "वे देश की कुल आबादी का मात्र 8.6 प्रतिशत है।"[14] इस प्रकार का विस्थापन केवल भौतिक न होकर सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक स्तर पर इन समुदायों को अस्थिर कर देता है। भूमि अधिग्रहण, पुनर्वास एवं पुनर्स्थापन अधिनियम, 2013 को इन समस्याओं के समाधान हेतु लागू किया गया है। इसके क्रियान्वयन में राज्य सरकारों और निजी कंपनियों की उदासीनता एक बड़ी चुनौती है।

उद्यमिता और नवाचार के अवसर– कुछ जनजातीय क्षेत्रों में वन उत्पाद आधारित उद्यमिता, इको–टूरिज्म, जैविक खेती और हस्तशिल्प जैसे क्षेत्रों में स्वरोजगार के अवसर विकसित हो रहे हैं। केंद्र सरकार द्वारा TRIFED के तहत 'वन धन योजना' जनजातीय उत्पादों के विपणन को बढ़ावा देती है। बाज़ार तक पहुँच, बिचौलियों की भूमिका और डिजिटल साक्षरता की कमी जनजातीय उत्पादों को उचित मूल्य दिलाने में बाधा उत्पन्न कर रहा है।

राजनीतिक सशक्तिकरण

जनजातीय समुदायों का राजनीतिक सशक्तिकरण केवल चुनाव में भागीदारी तक सीमित नहीं है, बल्कि यह स्वशासन, संस्थागत नियंत्रण और नीतिगत निर्णयों में भागीदारी के अधिकार से जुड़ा है। भारत में संवैधानिक स्तर पर अनुसूचित जनजातियों को प्रतिनिधित्व देने की व्यवस्था की गई है। वास्तविक सशक्तिकरण होने से समुदाय स्वयं अपनी विकास योजनाओं, संसाधनों और सामाजिक–सांस्कृतिक व्यवस्थाओं पर नियंत्रण रखते हैं।

पेसा अधिनियम और ग्राम सभा की भूमिका– पंचायती राज (अनुसूचित क्षेत्रों में विस्तार) अधिनियम, 1996 (PESA), 73वें संविधान संशोधन को अनुसूचित क्षेत्रों में लागू करने हेतु लाया गया था। इसका उद्देश्य था, "जनजातीय क्षेत्रों में ग्राम सभा को विकास योजनाओं की स्वीकृति, संसाधनों का प्रबंधन, परंपरागत न्याय प्रणाली का संचालन और सामाजिक न्याय का पालन जैसे वास्तविक निर्णय लेने का अधिकार मिलने चाहिए।"[15] पेसा अधिनियम ने पारंपरिक जनजातीय शासन प्रणाली को संवैधानिक मान्यता दी है।

कार्यान्वयन की चुनौतियाँ– अनेक राज्यों में ग्राम सभाएं केवल औपचारिक स्तर पर मौजूद है। ग्राम सभा की शक्तियों को अक्सर प्रशासनिक अधिकारियों या राजस्व विभाग द्वारा निष्क्रिय कर दिया जाता है। "जनजातीय प्रतिनिधियों की प्रशिक्षण, तकनीकी जानकारी और निर्णय लेने की स्वतंत्रता का अभाव भी उनकी प्रभावशीलता को सीमित करता है।"[16] इसके अलावे, सरकार और प्रशासन की अनिच्छा और पारंपरिक जनजातीय संस्थाओं के प्रति असंवेदनशीलता के कारण पेसा जैसे विधानों का ज़मीन पर उचित कार्यान्वयन नहीं हो पाता है।

परंपरागत नेतृत्व और अस्मिता आंदोलन– परंपरागत रूप से, जनजातीय समुदाय सर्वसम्मति आधारित निर्णय प्रणाली का पालन करते हैं। गोत्रीय परिषदें, बुजुर्गों की सभा या धार्मिक नेतृत्व उनकी सामाजिक–राजनीतिक जीवन की आधारशिला रही है। प्रशासनिक हस्तक्षेप और चुनावी राजनीति ने इन प्रणालियों को हाशिए पर धकेल दिया है। कुछ आंदोलनात्मक प्रयास, जैसे– झारखंड राज्य आंदोलन ने इस शक्ति को पुनर्जीवित किया है। "झारखंड मुक्ति मोर्चा (JMM) जैसे संगठनों के नेतृत्व में चलाए गए लंबे संघर्ष ने केवल एक राज्य की मांग नहीं किया था, बल्कि जनजातीय पहचान, संसाधनों पर अधिकार और सांस्कृतिक गरिमा की पुनर्प्राप्ति की भी मांग की थी।"[17]

प्रतिरोध आंदोलन और आत्म–शासन की मांग– हाल के वर्षों में झारखंड और छत्तीसगढ़ जैसे राज्यों में 'पथलगड़ी आंदोलन' हुआ, इसके अंतर्गत गाँवों में संविधान की धाराओं के पत्थर स्तंभ स्थापित कर ग्राम सभा की सर्वोच्चता घोषित की जाती है। यह आंदोलन एक राजनीतिक–वैधानिक प्रतिरोध के रूप में उभरा, जिसका उद्देश्य था कि राज्य और निजी कंपनियाँ ग्राम सभा की अनुमति के बिना कोई परियोजना लागू न कर पायें। सरकार ने इन आंदोलनों को कई बार 'राजद्रोही' घोषित कर दमनात्मक कार्रवाई की, जिससे जनजातीय विश्वास प्रणाली और संवैधानिक अधिकारों में टकराव की स्थिति उत्पन्न हुई।

राजनीतिक निरक्षरता और हिंसा की बाधाएँ– जनजातीय क्षेत्रों में राजनीतिक साक्षरता की कमी, शैक्षिक पिछड़ापन और सूचना के अभाव के कारण लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं में उनकी प्रभावी भागीदारी सीमित रहती है। साथ ही, कुछ क्षेत्रों में माओवादी हिंसा और सैन्यीकरण ने नागरिक स्वतंत्रताओं को बाधित किया है। जनजातीय युवा इस टकराव में दो छोरों राज्य की हिंसा और

---

[13] Rao, S., & Sinha, A. (2007). *Self Help Groups in Tribal India: A Study of Economic Empowerment and Social Inclusion*. Social Action, 57(2), p.132–137.

[14] Fernandes, W. (2007). *Singur and the Displacement Scenario*. Economic and Political Weekly, 42(3), p.52–58.

[15] Buch, N. (2001). *PESA: A Step Towards Tribal Self Rule*. Economic and Political Weekly, 36(15), 47–53.

[16] Sundar, N. (2009). *Bastards of Utopia: The Politics of Revolutionary Democracy in India*. Oxford University Press. p.275.

[17] Kumar, K. (2012). *Statehood and the Politics of Identity: The Jharkhand Movement*. Social Scientist, 40(3/4), p.61–69.

Journal of Research and Development
Peer Reviewed International, Open Access Journal.
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-17, Issue-5 | May - 2025

उग्रवादियों के दमन के बीच फँस जाते हैं। अतः राजनीतिक सशक्तिकरण का अर्थ केवल प्रतिनिधित्व नहीं होता है, बल्कि सांस्कृतिक मान्यता, संस्थागत स्वायत्तता और नीतिगत भागीदारी है।

वैयक्तिक अध्ययन

वैयक्तिक अध्ययन (Case Studies) के अंतर्गत जनजातीय सशक्तिकरण की प्रक्रियाओं को स्थानीय संदर्भों, सांस्कृतिक पृष्ठभूमियों और नीतिगत प्रभावों के साथ गहराई से समझने का अवसर प्राप्त होता है। मानवशास्त्र में, प्रायोगिक विश्लेषण (Ethnographic Insights) और क्षेत्रीय अनुभवों के माध्यम से यह स्पष्ट किया जाता है कि किस प्रकार कानून, योजनाएं और सामाजिक आंदोलन वास्तव में समुदायों के जीवन को प्रभावित करते हैं। इस अनुभाग में तीन क्षेत्रों– बस्तर (छत्तीसगढ़), नंदुरबार (महाराष्ट्र) और उत्तर–पूर्व भारत का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

बस्तर (छत्तीसगढ़)– बस्तर, छत्तीसगढ़ का एक वनवासी बहुल क्षेत्र है, जहाँ गोंड, मुरिया, हलबा और बैगा जैसे जनजातीय समुदाय निवास करते हैं। यह क्षेत्र प्राकृतिक संसाधनों से समृद्ध होते हुए भी विकास और सुरक्षा के संकटों से ग्रस्त है। वन अधिकार अधिनियम (2006) के अंतर्गत उपेक्षा की गई थी कि इन समुदायों को जंगलों पर अधिकार प्राप्त हो, किंतु शोध के निष्कर्ष से स्पष्ट होता है कि ग्राम सभाओं को अधिकारों की जानकारी नहीं है साथ ही वन विभाग का दबाव निरंतर बना हुआ है। पथलगड़ी आंदोलन के तर्ज पर बस्तर में भी कुछ गाँवों में संविधान की धाराओं के शिलालेख स्थापित कर स्वशासन की घोषणा की थी परंतु गिरफ्तारियाँ, आरोपपत्र और राजद्रोह जैसे कठोर प्रक्रिया का प्रयोग राज्य करता है। इसके साथ ही बस्तर क्षेत्र में माओवादी हिंसा और सैन्यीकरण ने सामान्य जनजीवन को बाधित किया है। इस क्षेत्रों में स्वयं सहायता समूहों (SHGs), जैविक कृषि और स्थानीय कुटीर उद्योगों के माध्यम से महिलाओं की आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ है। राज्य की विकास परियोजनाएँ अभी भी खनन, विस्थापन और सांस्कृतिक क्षरण को बढ़ावा दे रही है।

नंदुरबार, महाराष्ट्र– यह महाराष्ट्र का एक जनजातीय बहुल जिला है, यहाँ मुख्य रूप से भील और पावरा जनजातियाँ निवास करती है। यह क्षेत्र जनजातीय सशक्तिकरण का अपेक्षाकृत सफल उदाहरण प्रस्तुत करता है। "जनजातीय उप–योजना (TSP), शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं की पहुंच तथा ग्राम सभाओं की सक्रियता ने इस प्रकार के परिवर्तन को गति दिया है।"[18] इस क्षेत्र में एकलव्य मॉडल विद्यालयों (EMRS) की उपलब्धता ने शिक्षा के स्तर को नई ऊँचा प्रदान किया है एवं कई जनजातीय विद्यार्थी उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। महिला SHGs और स्वास्थ्य स्वयंसेवक (ASHA कार्यकर्ता) मातृ स्वास्थ्य और पोषण में सकारात्मक योगदान दे रही है। ग्राम सभाओं द्वारा नियमित रूप से बैठकें आयोजित कर योजनाओं की समीक्षा की जाती है। पानी, भूमि उपयोग और ग्राम वन समितियों में बाहरी हस्तक्षेप की समस्याएं बनी हुई है।

उत्तर–पूर्व भारतः खासी और नागा जनजातीय समुदायों का अध्ययन– उत्तर–पूर्व भारत, विशेषकर मेघालय और नागालैंड में जनजातीय समुदायों को संविधान की छठी अनुसूची के तहत विशेष स्वायत्तता प्राप्त है। खासी हिल्स स्वायत्त जिला परिषद (KHADC) और नागा ट्राइबल काउंसिल्स स्थानीय प्रशासन, भूमि अधिकारों और Customary कानूनों पर नियंत्रण बनाए हुए है। खासी समुदाय एक मातृसत्तात्मक समाज है, जो महिलाओं को सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन में प्रमुख स्थान देता है। यद्यपि राजनीतिक नेतृत्व में पुरुषों की संख्या अधिक है, फिर भी महिलाओं की सांस्कृतिक भागीदारी सशक्त है।

नागा जनजातियों ने दशकों तक संप्रभुता और स्वायत्तता की माँग को लेकर सशस्त्र संघर्ष किया है। हाल के वर्षों में शांति वार्ताओं और राजनीतिक समझौतों के माध्यम से कुछ सुधार हुआ है, परंतु "अविश्वास और अधूरी माँगों के कारण प्रशासनिक ढाँचा अभी भी अस्थिर बना हुआ है।"[19] उत्तर–पूर्व के अनुभव के अनुसार, कानूनी स्वायत्तता तभी प्रभावशाली होने के लिए स्थानीय शासन, सांस्कृतिक सम्मान और सतत शांति स्थापना के साथ जुड़ा होना आवश्यक है।

सशक्तिकरण में बाधाएँ

भारत में अनुसूचित जनजातियों के लिए संवैधानिक सुरक्षा, कानूनी अधिकार और कल्याणकारी योजनाएँ संचालित हो रही है, फिर भी जनजातीय समुदायों को वास्तविक सशक्तिकरण की दिशा में कई जटिल और परस्पर जुड़ी हुई बाधाओं का सामना करना पड़ता है। ये बाधाएँ केवल संरचनात्मक ही नहीं होता है, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक भी होता है।

संरचनात्मक एवं संस्थागत भेदभाव– जनजातीय समुदायों के खिलाफ संस्थागत भेदभाव आज भी प्रशासनिक प्रणाली में गहरी पैठ बनाए हुआ है। अनेक सरकारी योजनाएं जनजातियों तक समय पर और उचित तरीके से नहीं पहुँच पाती है। "भूमि अधिकार, वन पट्टे, छात्रवृत्ति, या स्वास्थ्य सेवाओं के लिए आवेदन करते समय इन्हें अक्सर प्रक्रियात्मक बाधाओं, भाषाई अवरोध और भेदभावपूर्ण व्यवहार का सामना करना पड़ता है।"[20] प्रशासनिक अधिकारी और निचले स्तर के कर्मचारी कई बार जनजातीय समुदायों को 'अज्ञानी' या 'अयोग्य' समझते हैं, जिससे उनकी समस्याओं को गंभीरता से नहीं लिया जाता है।

सांस्कृतिक उपेक्षा और जागरूकता का अभाव– जनजातीय भाषाओं, धार्मिक परंपराओं, ज्ञान प्रणालियों और सांस्कृतिक पहचान को मुख्यधारा के लोग प्रायः हेय दृष्टि से देखते हैं। विद्यालयों, अस्पतालों और अन्य संस्थानों में जनजातीय ज्ञान परंपराओं को मान्यता नहीं दी जाती है, जिससे जनजातीय बच्चों और युवाओं में सांस्कृतिक विस्थापन और आत्मगौरव की कमी देखी जाती है। इसके अतिरिक्त, कई बार सरकारी योजनाओं और अधिकारों की जानकारी, जनजातीय लोगों तक उनकी स्थानीय भाषाओं और

---

[18] NCAER. (2018). *State of Tribal Health in India: A Report*. National Council of Applied Economic Research. p.178.

[19] Horam, M. (2006). *Naga Polity*. B.R. Publishing. p.44.

[20] Shah, G. (2010). *Social Movements in India: A Review of Literature*. SAGE Publications. p.91.

Journal of Research and Development
Peer Reviewed International, Open Access Journal.
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-17, Issue-5 | May - 2025

सांस्कृतिक सन्दर्भों में नहीं पहुँचती है। परिणामस्वरूप वन अधिकार अधिनियम (FRA) या पेसा अधिनियम जैसे– कानून से भी लाभान्वित नहीं हो पाते हैं।

राजनीतिक प्रतीकवाद और नौकरशाही की निष्क्रियता– संविधान में राजनीतिक प्रतिनिधित्व सुनिश्चित किया गया है, परंतु वास्तविक निर्णय लेने की शक्ति आज भी जनजातीय नेताओं के पास नहीं है। "कई बार राजनीतिक दल जनजातीय चेहरों को केवल प्रतीकात्मक प्रतिनिधित्व के लिए इस्तेमाल करते हैं एवं नीतियों के निर्माण में उनकी भागीदारी नगण्य रहती है।"[21] ग्राम सभाएं, जिन्हें पेसा अधिनियम के तहत सबसे सशक्त इकाई माना जाता है, कई क्षेत्रों में केवल कागज़ पर मौजूद है। कई बार विकास परियोजनाओं की स्वीकृति बिना ग्राम सभा की सहमति के ही कर दी जाती है, जो न केवल कानूनी उल्लंघन है, बल्कि लोकतांत्रिक प्रक्रिया के साथ भी विश्वासघात है।

पर्यावरणीय क्षरण और जबरन विस्थापन– जनजातीय समुदायों की आजीविका और सांस्कृतिक अस्तित्व मुख्यतः प्राकृतिक संसाधनों पर आधारित है। खनन, बांध, सड़क तथा औद्योगिक परियोजनाओं के नाम पर इन संसाधनों का दोहन होता है, तो जनजातीय समुदाय जबरन विस्थापन का शिकार होते हैं। वाल्टर फर्नांडिस (2007) के अनुसार भारत में विकास परियोजनाओं से विस्थापित लोगों में 40 प्रतिशत से अधिक जनजातीय समुदायों से जुड़ते हैं, जबकि उनकी जनसंख्या केवल 8.6 प्रतिशत है। ये विस्थापन उन्हें केवल आर्थिक रूप से नहीं, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से भी हानि पहुँचाता है।

उग्रवाद और सैन्यीकरण– छत्तीसगढ़, झारखंड और उड़ीसा जैसे राज्यों के कुछ जनजातीय क्षेत्रों में माओवादी हिंसा और सुरक्षा बलों की मौजूदगी के कारण लोकतांत्रिक प्रक्रियाएं गंभीर रूप से बाधित हो रही है। जनजातीय युवाओं को प्रायः उग्रवादियों द्वारा जबरन शामिल कर लिया जाता है या उन्हें राज्य द्वारा संदेह की निगाह से देखा जाता है। ऐसे क्षेत्रों में न शिक्षा, न स्वास्थ्य और न ही स्वशासन की कोई व्यवस्था प्रभावी रूप से कार्य कर पाती है।

समावेशी सशक्तिकरण हेतु रणनीतियाँ

जनजातीय समुदायों के लिए वास्तविक और टिकाऊ सशक्तिकरण सुनिश्चित करने हेतु केवल संवैधानिक प्रावधान या आरक्षण पर्याप्त नहीं हैं। समावेशी, भागीदारीपरक और सांस्कृतिक रूप से संवेदनशील रणनीति के कारण इन समुदायों की विविधताओं, अनुभवों और जरूरतों को समझते हुए उन्हें निर्णय प्रक्रिया का सक्रिय हिस्सा बनाया जाना चाहिए। मानवशास्त्र इस प्रक्रिया को केवल विकास की प्राप्ति नहीं, बल्कि 'सह–अस्तित्व, स्वायत्तता और सम्मान की पुनर्स्थापना' के रूप में देखता एवं प्रस्तुत करता है।

ग्राम संस्थानों और समुदाय आधारित भागीदारी को सशक्त बनाना– सबसे पहली आवश्यकता है कि ग्राम सभा को केवल परामर्शदात्री निकाय न मानकर, उसे वास्तविक निर्णय–निर्माता के रूप में कार्यशील बनाया जाना चाहिए। "पेसा अधिनियम (1996) के प्रावधानों को राज्य सरकारों के पंचायती राज अधिनियमों में पूरी तरह सम्मिलित कर ग्राम सभाओं को वित्तीय, प्रशासनिक और कानूनी अधिकार प्रदान किये जाने चाहिए।"[22] इसके अतिरिक्त, चुने हुए जनजातीय प्रतिनिधियों को प्रशिक्षण, नेतृत्व विकास, वित्तीय प्रबंधन और विधिक जागरूकता प्रदान करनी चाहिए। स्थानीय भाषाओं में नागरिक शिक्षा अभियान चलाकर समुदायों को उनके अधिकारों और कर्तव्यों की जानकारी देना अत्यंत आवश्यक है।

नीति कार्यान्वयन और जवाबदेही की प्रभावी प्रणाली– वन अधिकार अधिनियम (FRA), शिक्षा का अधिकार (RTE) और अनुसूचित जाति/जनजाति अत्याचार निवारण अधिनियम जैसे कानूनों की सफलता केवल कागजों में सीमित नहीं होनी चाहिए बल्कि जमीनी कार्यान्वयन में दिखनी चाहिए। इसके लिए राज्य स्तरीय निगरानी समितियाँ, जैसे जनजातीय प्रतिनिधि, सामाजिक संगठन और स्वतंत्र पर्यवेक्षक, सक्रिय रूप से कार्य कर सकते हैं। सोशल ऑडिट, जन सुनवाई और ग्रामीण रिपोर्ट कार्ड जैसे साधनों को जनजातीय क्षेत्रों में लागू कर पारदर्शिता और जवाबदेही सुनिश्चित की जा सकती है। डिजिटल तकनीक की सहायता से प्रत्यक्ष लाभ अंतरण (DBT), शिकायत निवारण मंच एवं स्थानीय ऐप्स के माध्यम से स्थानीय भाषा और ऑफलाइन सहयोग तंत्र से भी सेवाएं जनजातीय लोगों तक पहुँचाई जा सकती है।

शिक्षा, जागरूकता और नेतृत्व कौशल का संवर्धन– जनजातीय शिक्षा में मातृभाषा आधारित बहुभाषी शिक्षा (MTB-MLE) को प्राथमिक स्तर पर लागू करना अत्यंत आवश्यक है। इसके साथ ही, "विद्यालयों में जनजातीय इतिहास, पर्यावरणीय ज्ञान और सांस्कृतिक विरासत को सम्मिलित कर पाठ्यक्रम को स्थानीय संदर्भ से जोड़ा जाना चाहिए।"[23] एकलव्य मॉडल स्कूल, आवासीय विद्यालय और स्कॉलरशिप योजनाओं के माध्यम से केवल शिक्षा ही नहीं, बल्कि नेतृत्व कौशल का विकास भी किया जाना चाहिए।

सतत विकास के साथ सांस्कृतिक संवेदनशीलता का समन्वय– विकास परियोजनाओं की योजना बनाते समय जनजातीय सहमति, स्थानीय पर्यावरणीय प्रभाव और संवैधानिक प्रावधानों का अनुपालन अनिवार्य किया जाना चाहिए। फ्री, प्रायर एंड इंफॉर्म्ड कंसेंट (FPIC) के सिद्धांत को ग्राम सभाओं में अनिवार्य बनाना चाहिए। लघु वनोपज (MFP) आधारित लघु उद्योग, इको–टूरिज्म, जैविक कृषि और हस्तकला उत्पादों को प्राथमिकता देते हुए, इसे बाजार से भी जोड़ना आवश्यक है। विकास योजनाएं ऐसी होनी चाहिए जो रोज़गार, स्वायत्तता और सांस्कृतिक गरिमा को एक साथ बढ़ावा प्रदान करें।

---

[21] Rath, G. C. (2006). *Tribal Development in India: The Contemporary Debate*. SAGE Publications. p.49.

[22] Buch, N. (2001). *PESA: A Step Towards Tribal Self Rule*. Economic and Political Weekly, 36(15), p.51.

[23] Nambissan, G. B. (2009). *Exclusion and Discrimination in Schools: Experiences of Dalit Children*. Indian Institute of Dalit Studies. p.234.

Journal of Research and Development
Peer Reviewed International, Open Access Journal.
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-17, Issue-5 | May - 2025

गैर–सरकारी संगठनों, शिक्षाविदों और मीडिया की भूमिका– NGO, शोध संस्थान और सामुदायिक मीडिया जनजातीय सशक्तिकरण को व्यवहारिक रूप देने में सेतु का कार्य कर सकता है। NGO स्थानीय स्वयं सहायता समूह, विधिक सहायता केंद्र और महिला नेतृत्व प्रशिक्षण जैसी पहलें संचालित की जा सकती है। सामुदायिक रेडियो, जनजातीय भाषाओं में समाचार और डिजिटल प्लेटफॉर्म जनजातीय आवाज़ को मुख्यधारा में लाने के सशक्त माध्यम बन सकते हैं। इसके साथ ही, आदिवासी उत्सवों, सांस्कृतिक मेलों और कलात्मक प्रदर्शनियों के माध्यम से जनजातीय पहचान को राष्ट्रीय स्तर पर सम्मान दिया जाना चाहिए।

निष्कर्ष

भारत में जनजातीय समुदायों की राजनीतिक भागीदारी एवं सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक सशक्तिकरण केवल संवैधानिक दायित्व नहीं है, बल्कि यह सामाजिक न्याय, लोकतंत्र और समावेशन की वास्तविक परीक्षा है। आलेख एक मानवशास्त्रीय दृष्टिकोण से इन समुदायों की स्थिति का गहन विश्लेषण करता है और यह दर्शाता है कि सशक्तिकरण एक बहुआयामी, सतत और स्थानीय संदर्भ में समझी जाने वाली प्रक्रिया है। पिछले अनुभागों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि भले ही पेसा अधिनियम (1996), वन अधिकार अधिनियम (2006) और मनरेगा, एकलव्य स्कूल जैसी योजनाएँ लागू की गई हो, इसका प्रभाव क्षेत्र विशेष, राज्य विशेष और कार्यान्वयन की गुणवत्ता पर निर्भर करता है।

राजनीतिक प्रतिनिधित्व के अनुसार, संविधान में आरक्षण की व्यवस्था ने जनजातीय प्रतिनिधियों को संसद और पंचायतों में स्थान तो दिया है, किंतु उनकी निर्णय लेने की स्वायत्तता सीमित है। कई बार ये प्रतिनिधित्व प्रतीकात्मक बनकर रह जाते हैं। सामाजिक सशक्तिकरण के क्षेत्र में शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच में धीरे–धीरे सुधार हो रहा है, लेकिन अभी भी कई क्षेत्रों में संरचनात्मक असमानता, सांस्कृतिक उपेक्षा और भाषायी अवरोध मौजूद है। "शिक्षा को जनजातीय सांस्कृतिक सन्दर्भों से जोड़ना और स्वास्थ्य सेवाओं में परंपरागत ज्ञान को मान्यता देना अत्यावश्यक है।"[24] "आर्थिक सशक्तिकरण, जिसमें संसाधनों पर अधिकार, आजीविका सुरक्षा और वित्तीय समावेशन की बात शामिल है, तब तक अधूरा रहेगा जब तक भूमि अधिकार, विस्थापन और प्राकृतिक संसाधनों पर नियंत्रण जैसे मुद्दों को प्राथमिकता नहीं दी जाएगी।"[25]

बस्तर, नंदुरबार और उत्तर–पूर्व भारत के वैयक्तिक अध्ययन यह दर्शाता है कि जहाँ स्थानीय प्रशासन उत्तरदायी है, नागरिक संगठन सक्रिय है और नीतियाँ सांस्कृतिक दृष्टिकोण से लागू की गई है, वहाँ सशक्तिकरण के सकारात्मक परिणाम प्राप्त हुए हैं। संघर्ष, हिंसा और प्रशासनिक उदासीनता वाले क्षेत्रों में योजनाएँ या तो लागू नहीं होती या असफल हो जाती है।

नीतिगत एवं व्यावहारिक सुझाव–

1. ग्राम सभाओं को पूर्ण अधिकार एवं परंपरागत जनजातीय संस्थाओं को कानूनी मान्यता मिलनी चाहिए।
2. वन अधिकार अधिनियम, पेसा अधिनियम का प्रभावी कार्यान्वयन और उसकी निगरानी होनी चाहिए।
3. जनजातीय संस्कृति और भाषा आधारित शिक्षा प्रणाली को बढ़ावा मिलना चाहिए।
4. आर्थिक योजनाओं को संसाधनों के अधिकार से जोड़ना और विस्थापन की पुनरावृत्ति पर प्रतिबंध लगाया जाना चाहिए।
5. विशेष रूप से वन उत्पाद, हस्तशिल्प और डिजिटल नवाचार के माध्यम से जनजातीय उद्यमिता को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।
6. मीडिया, शैक्षणिक संस्थानों और NGOs की साझेदारी को संस्थागत रूप दिया जाना चाहिए।

भविष्य के लिए अनुसंधान की दिशा–

जनजातीय सशक्तिकरण पर शोध अब केवल नीति समीक्षा या आंकड़ों तक सीमित नहीं होना चाहिए। दीर्घकालिक, सहभागी एवं समुदाय आधारित अध्ययन आवश्यक है, जिससे यह स्पष्ट है कि किस प्रकार भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में सशक्तिकरण की प्रक्रिया व्यावहारिक रूप से फलदायी हो रही है। लैंगिक अध्ययन, डिजिटल समावेशन, युवाओं की भूमिका और सांस्कृतिक पुनरुत्थान जैसे विषयों पर भी गहन अनुसंधान आवश्यक है। जनजातीय सशक्तिकरण न केवल योजनाओं की सफलता से मापा जा सकता है और न ही मात्र प्रतिनिधित्व से। यह एक व्यापक प्रक्रिया है जिसमें गरिमा, पहचान, अधिकार और आत्मनिर्भरता का समावेश होता है। नीतियों के सांस्कृतिक रूप से प्रासंगिक, संस्थागत रूप से जवाबदेह और सामाजिक रूप से न्यायपूर्ण होने की स्थिति में सशक्तिकरण का कार्य पूर्ण होकर रहेगा।

संदर्भ ग्रंथ - सूची

1. Basu, S. (1994). *Health Status of Tribal Women in India*. Social Change, 24(4), p.144–152.
2. Baviskar, A. (2004). *In the Belly of the River: Tribal Conflicts over Development in the Narmada Valley*. Oxford University Press. p.254.
3. Buch, N. (2001). *PESA: A Step Towards Tribal Self Rule*. Economic and Political Weekly, 36(15), 47–53.
4. Fernandes, W. (2007). *Development-induced Displacement in India: Current Issues and the Role of Rehabilitation Policy*. Indian Social Institute. p.58.
5. Fernandes, W. (2007). *Singur and the Displacement Scenario*. Economic and Political Weekly, 42(3), p.52–58.

---

[24] Nambissan, G. B. (2009). *Exclusion and Discrimination in Schools: Experiences of Dalit Children*. Indian Institute of Dalit Studies. p.237.
Basu, S. (1994). *Health Status of Tribal Women in India*. Social Change, 24(4), p.144–152.

[25] Fernandes, W. (2007). *Development-induced Displacement in India: Current Issues and the Role of Rehabilitation Policy*. Indian Social Institute. p.58.

6. Gadgil, M., & Guha, R. (1995). *Ecology and Equity: The Use and Abuse of Nature in Contemporary India*. Penguin Books. p.117.
7. Guha, R. (1999). *Savaging the Civilized: Verrier Elwin, His Tribals, and India*. University of Chicago Press. p. 45.
8. Horam, M. (2006). *Naga Polity*. B.R. Publishing. p.44.
9. Kumar, K. (2012). *Statehood and the Politics of Identity: The Jharkhand Movement*. Social Scientist, 40(3/4), p.61–69.
10. Lyndem, B. (2004). *Women in Governance: The Khasi Perspective*. Indian Anthropologist, 34(1), p.72–80.
11. Mehta, R. (2013). *Tribal Development in India: A Study in Human Rights Perspective*. Concept Publishing Company. p.142.
12. Nambissan, G. B. (2009). *Exclusion and Discrimination in Schools: Experiences of Dalit Children*. Indian Institute of Dalit Studies. p.231-237.
13. NCAER. (2018). *State of Tribal Health in India: A Report*. National Council of Applied Economic Research. p.178.
14. Rao, A. (2004). *Gender, Caste, and Class in India's Tribal Societies*. Social Scientist, 32(1–2), p.58–67.
15. Rao, M. S. A. (2002). *Social Movements and Social Transformation: A Study of Two Backward Classes Movements in India*. Manohar Publishers. p.217.
16. Rao, S., & Sinha, A. (2007). *Self Help Groups in Tribal India: A Study of Economic Empowerment and Social Inclusion*. Social Action, 57(2), p.132–137.
17. Rath, G. C. (2006). *Tribal Development in India: The Contemporary Debate*. SAGE Publications. p.49.
18. Shah, G. (2010). *Social Movements in India: A Review of Literature*. SAGE Publications. p.91.
19. Sharma, A. N. (2001). *PESA and the Dynamics of Tribal Self-Governance*. Economic and Political Weekly, 36(50), p.118–121.
20. Singh, K. S. (1982). *Tribal Movements in India: Volume I*. Manohar Publications. p.211.
21. Sundar, N. (2009). *Bastards of Utopia: The Politics of Revolutionary Democracy in India*. Oxford University Press. p.275.
22. Xaxa, V. (2001). *Protective Discrimination: Why Scheduled Tribes Lag Behind Scheduled Castes*. Economic and Political Weekly, 36(29), p.32–38.
23. Yadav, Y. (2003). *Understanding the Second Democratic Upsurge: Trends of Bahujan Participation in Electoral Politics in the 1990s*. In *Transforming India: Social and Political Dynamics of Democracy*. Oxford University Press. p.203.